International Journal of Social Science and Education Research

ISSN Print: 2664-9845
ISSN Online: 2664-9853
Impact Factor: RJIF 8.42
IJSSER 2024; 6(2): 492-495
www.socialsciencejournals.net
Received: 06-12-2024
Accepted: 23-12-2024

डॉ0 राजकुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जनता विद्या मन्दिर गणपतराय रासीवासिया महाविद्यालय, चरखी दादरी, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 राजकुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जनता विद्या मन्दिर गणपतराय रासीवासिया महाविद्यालय, चरखी दादरी, हरियाणा, भारत

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की राजनीतिक चेतना

डॉ0 राजकुमार

DOI: https://www.doi.org/10.33545/26649845.2024.v6.i2f.398

सारांश
भारतेन्दु के हृदय में अपने देश तथा समाज के प्रति असीम अनुराग था। वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट तथा विचारों की अभिव्यक्ति पर प्रतिबन्ध होने के बाद भी भारतेन्दु जी ने विदेशी शासन की खुलकर आलोचना की है। किसी भी बन्धन की परवाह न करते हुए भारतेन्दु जी ने अंग्रेजी राज्य को राक्षसी राज्य की संज्ञा देते हुए कहा है –

''उपजा ईश्वर कोप से,
औ आया भारत बीच।
छार खार सब हिन्द करूँ मैं,
तो उत्तम नहिं नीच।
मुझे तुम सहज न जानो जी,
मुझे इक राक्षस मानो जी।''

कूटशब्दः राजनीतिक, कम्पनी, शासन, समकक्ष, विरासत।

प्रस्तावना
भारतेन्दु का जन्म सन् 1850 में हुआ था। ''राजनीतिक दृष्टि से इसे विस्फोटक काल कहा जाना चाहिए।'' जिस समय भारतेन्दु का जन्म हुआ, उस समय भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभुत्व था तथा व्यापारिक उन्नति के साथ सामान्य विस्तार की नीति के कारण डलहौजी ने अनेक स्थानों पर अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिया।

भारतेन्दु जी के साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करने से पूर्व ही सन् 1857 का प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता–संग्राम हो चुका था। इस प्रथम जनक्रान्ति की पृष्ठभूमि में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा किए गए अत्याचारों का शत्–वर्षीय इतिहास था। 1857 के इन्हीं अत्याचारों के विरोध में भारतीय जनता का विद्रोह था, जिसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिपाहियों ने देशी सामन्तों के साथ मिलकर हिस्सा लिया था। लेकिन इस विद्रोह में भारतीय जनता का विद्रोह था, जिसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिपाहियों ने देशी सामन्तों के साथ मिलकर हिस्सा लिया था। लेकिन इस विद्रोह की रीढ़ हिन्दुस्तान के अलग–अलग जनपदों की किसान जनता थी। अनेक ऐतिहासिक कारणों से यह क्रान्ति असफल रही। जिस प्रचण्डता एवं तेजी के साथ यह ज्वाला भड़की थी, उससे भी अधिक तीव्रता से इनका दमन कर दिया गया।

भारत का शासन–सूत्र महारानी विक्टोरिया के हाथ में चला गया। विक्टोरिया रानी के शासनकाल में भारतवासियों को अनेक आश्वासन दिलाए गए तथा यह विश्वास दिलाया गया कि सबको समान भाव से नौकरी मिलेगी। रंगभेद के आधार पर भेदभाव नहीं होगा तथा किसी के धर्म में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। कई वर्षों के बाद इस प्रकार की शान्ति एवं व्यवस्था का आश्वासन पाकर एक बार तो सबको विक्टोरिया राज्य पर विश्वास–सा हुआ। प्राचीन समय में राजा को ईश्वर के समकक्ष न्याय करने वाला समझा जाता था। ऐसे शासन की छत्र–छाया में भारतवासियों का सुख की सांस लेना और महारानी विक्टोरिया की सराहना करना स्वाभाविक था। भारतेन्दु ने भी इन्हीं संस्कारों एवं पारिवारिक परिपाटी से प्रेरित होकर महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा में कहा है–

''पूरी अभी की कटोरिया सी
चिर जीओ सदा विक्टोरिया रानी।
सूरज चंद प्रकाश कर जब लौं
रह सातहू सिंधु मैं पानी।।[1]
राज करौ सुख सौं तब लौ निज
पुत्र और पौत्र समेत सयानी।।

पालौ प्रजागन को सुख सों जग
पालौ प्रजागन को सुख सों जग
कीरति मान करै गुन–गानी।। [2]

भारतेन्दु जी को राजभक्ति अपने पूर्वजों से विरासत में मिली हुई थी। भारतेन्दु का परिवार अंग्रेजों का कृपा–पात्र भी था और विश्वास पात्र भी। भारतेन्दु यह स्वीकार करते हैं कि–''राजभक्ति भरत खण्ड की मिट्टी का सहज गुण एवं कर्त्तव्य धर्म है।''[3] इसी विश्वास एवं संस्कार से भारतेन्दु जी ने 'प्रिन्स अल्बर्ट' की मृत्यु पर 'श्री अलवरत वर्णन' प्रिंस ऑफ द्वितीय पुत्र ड्यूक ऑफ एडिम्बरा के विवाह पर मुँह दिखावनी,' 'भारत–भिक्षा', 'भारत–वीरत्व', 'विजय–वल्लभरी', तथा 'विजयनी विजय वैजन्ती,' आदि रचनाओं में राजभक्ति एवं कृतज्ञता के उद्‌गार प्रकट किए हैं।

भारतेन्दु की विषम स्थिति थी, पारिवारिक स्तर पर वे 'क्राउन' के विश्वासपात्र थे। उनकी नैतिकता क्राउन के समक्ष नतमस्तक थी, पर वे देख रहे थे कि अंग्रेज देश के साथ विश्वासघात कर रहे हैं। यह स्थिति भी उनके लिए पीड़ाजनक थी। भारतेन्दु को दोनों पारिस्थितियों से जूझना पड़ा। उनके सम्पूर्ण कृतित्व को सरकस के खिलाड़ी की तरह सन्तुलन की कसी हुई डोर पर चलना पड़ा। एक साथ वे राजभक्ति और देशभक्ति दोनों का निर्वाह करते दिखाई पड़ते हैं। एक ही छन्द की पहली पंक्ति में वे 'क्राउन के वफादार दिखाई पड़ते, तो दूसरी पंक्ति में दश की आर्थिक स्थिति उन्हें झकझोर रही है–

''अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश जात, इहै है ख्वारी।। [4]

महारानी विक्टोरिया के पौत्र प्रिंस फ्रैडरिक के भारत आगमन पर, जो कविता उन्होंने लिखी थी, वह अंग्रेजों के प्रति वफादारी से सराबोर अवश्य है, किन्तु राष्ट्र की पीड़ा और छटपटाहट की भी उसमें करूण आवाज है।

यह बात जरूर है कि उन्नसवीं शताब्दी में जो राष्ट्रवाद विकसित हुआ, उसमें साम्प्रदायिकता के रंग भी मिले हुए थे। अंग्रेजों ने 1857 में भारतीय हिन्दू और मुसलमान जनता की जबरदस्त एकता को देखकर यह अच्छी तरह समझ लिया था कि इन धार्मिक समुदायों को लड़ाए बिना वे हिन्दुस्तान पर शासन नहीं कर सकते। इसलिए 1857 के बाद जहाँ एक ओर राजभक्ति का दबदबा है, वहीं दूसरी ओर नई उभरती हुई राष्ट्रीय चेतना अन्तःकरण में विद्यमान है। यह आसानी से देखा जा सकता है कि भारतेन्दु युग के अनेक साहित्यकार अंग्रेजी राज की प्रतिष्ठा को कई बार एक ऐसे अवसर के रूप में देखते हैं कि अंग्रेज मुगल साम्राज्य के संहारक और 'हिन्द जाति' के संरक्षक हैं। इसी तरह से मुसलमान समाज सुधारक भी कई बार हिन्दुओं के मुकाबले अंग्रेजों को अपना संरक्षक मानते दिखाई देते हैं। इस धार्मिक विभाजन की कई अभिव्यक्तियाँ भारतेन्दुकालीन साहित्य में मिलती हैं–

''सौचहू भारत में बढ़यौ अचरज सहित अनंद।
निरखत पच्छिम सों उदित आज अपूरब चंद।
दृष्ट नृपति बलदल दली दीना भारत–भूमि।
लहि है आज अनंद अति तव पद पंकजचूमि
जैसे आतप तपित कों छाया सुखंद गुनात।
यवन राज के अंत तुव आगम तिमि दरसात।
मसजिद लखि बिसनाथ ढिग परे हिय जो घाव।
ता कहं मरहम सहिस यह तुब दरसन नर राव। [5]

इतना होने पर भी इसी स्वागत गान में यह पुलिस और अदालत को नहीं भूलतें–

''पहरू नहि कोइ लखि परै, होय अदालत बंद।
ऐसो निरूपद्रव केरा राजकुंवर सुख कंद। [6]

उन्होंने लार्ड रिपन जैसे भारत के सच्चे हितैषी की स्तुति में 'रिपनाष्टक' लिखा–

''हम राज भक्ति को बीज
जो अब जौ उन अंतर धरयौ।
निज न्याय नीर सों सोंचि कै
तुम बामै अंकुर करयौ।''[7]

अंग्रेजों की अफगान विजय पर उन्होंने 'विजय वल्लरी' कविता लिखी। कविता का शीर्षक देखने से यह कविता राजभक्ति की द्योतक प्रतीत होती है किन्तु इसके भीतर भी 'हिन्दू समाज' की शिकायतों की ओर ध्यान आकृष्ट करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

''आर्य्य गगन कों का मिल्यो
जो अति प्रफुलित गात।
सबै कहत जै आजु क्यौं
यह नहिं जान्यौ जात।
काबुल सों इनको कहा हिये
हरख की की आस।
ये तो निज धन नास सों
रन सों और उदास।''[8]

अंग्रेजों की अफगानिस्तान विजय पर सारे देश में दीवाली मनाई गई थी, किन्तु भारतेन्दु इसका विरोध करते हुए पूछते हैं, आर्यों को इससे क्या मिलता है ? वे क्यों खुशी मनाते हैं ? इस युद्ध में भारत की क्षति ही हुई है। वे अंग्रेज शासकों की कूटनीति का स्पष्टीकरण कते हुए लिखते हैं–

''स्ट्रैची डिजरैली लिटन चिंतय नीति के जाल।
फँसि भारत जर जर भयो काबुल युद्ध अकाल।
सृजन मिलै अंग्रेज को होय रूस की रोक।
बढ़ै ब्रिटिश वाणिज्य पै हमको केवल शोक।
भारत राज मंझार जौ कहुँ काबुल मिलिजाइ।
जज्ज कलक्टर होइ है हिंदू नहिं तित धाई।''[9]

भारतेन्दु के हृदय में अपने देश तथा समाज के प्रति असीम अनुराग था। वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट तथा विचारों की अभिव्यक्ति पर प्रतिबन्ध होने के बाद भी भारतेन्दु जी ने विदेशी शासन की खलुकर आलोचना की है। किसी भी बन्धन की परवाह न करते हुए भारतेन्दु जी ने अंग्रेजी राज्य को राक्षसी राज्य की संज्ञा देते हुए कहा है–

''उपजा ईश्वर कोप से,
और आया भारत बीच।
छार खार सब हिन्द करूँ मैं,
ते उत्तम नहिं नीच।
मुझे तुम सहज न जानो जी,
मुझे इक राक्षस मानो जी।''[10]

भारतेन्दु जी की राजभक्ति उन खुशामद पिट्ठुओं जैसी नहीं थी जो उपाधि, लालच, भय तथा पैसे के कारण उनकी प्रत्येक बात का समर्थन करते थे। देश–हित के लिए अपना तन–मन–धन लुटाने वाले भारतेन्दु को अंग्रेजों की भक्ति से कुछ लेना न था। उनकी राजभक्ति में भी देशभक्ति में भी देशहित तथा देश–प्रेम समाहित था। वे अंग्रेजों की प्रशंसा या निन्दा भारत की

हित–चिन्ता के कारण करते थे। इसलिए विक्टोरिया से प्रार्थना करते हुए भारतेन्दु जी ने कहा है–

''दीन भये बलहीन भये,
धन छीन भये सब बुद्धि हिरानी।
ऐसी ना चाहिए आपको राज
प्रजागन ज्यों मछरी बिनु पानी।।
या रूज की तुम ही अहो बैद,
कहै तेहिं ते 'हरिचंद' बखानी।।
टिक्स देहु छुड़ाई कहै सब
जीवो सदा विक्टोरिया रानी।।''[11]

'भारत–दुर्दशा' नाटक में भारत बार–बार पुकारता है कि ''मात, राजेश्वरी विजयिनी! मुझे बचाओ। अपनाए की लाज रखो।''[12] परन्तु भारतेन्दु जी को आभास हो जाता है कि 'परमेश्वर बैकुण्ठ में और राज–राजेश्वरी सात समुद्र पार।''[13] इसलिए केवल राज–राजेश्वरी पर भरोसा रख कर देश की समस्याओं का समाधान नहीं होने वाला है।

(क) राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति

भारतेन्दु अपने साहित्य के माध्यम से जन साधारण तक राष्ट्रीय भावनाओं का संचार करके उन्हें देश के प्रति जाग्रत करना चाहते थे। भारतेन्दु के साहित्य में एक ओर अतीत का गौरवगान है तो दूसरी ओर तत्कालीन समाज का चित्रण। भारतेन्दु अतीत और वर्तमान की तुलना के द्वारा समाज में नवचेतना तथा देश–प्रेम की भावना जगाकर राष्ट्रीय आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त करना चाहते थे। ''हा! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि, पाणिनी, शाक्य सिंह, बाणभट्ट प्रभृति कवियों के नाममात्र से ही अब भी सारे संसार में ऊँचा है, उस भारत की यह दुर्दशा! जिस भारत के राजा चन्द्रगुप्त और अशोक का शासन रोम–रूस तक जाना जाता था, उस भारत की यह दुर्दशा। जिस भारत में राम, युधिष्ठिर, नल, हरिश्चन्द्र, रतिदेव, शिवि इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गए हों, उनकी यह दशा।''[14]

'बादशाह दर्पण' में भी भारत किसी समय सारी पृथ्वी का मुकुट था। वही आज अधीन हो रहा है। ऐसी परिस्थितियों में भारतेन्दु केवल आँसू बहाकर या दुःख प्रकट करके नहीं बैठ जाते, कमर बाँधकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं–

''उठौ–उठौ क्यौं होरो अपुन समिरों री।
राम युधिष्ठिर विक्रम की तुम झटपट सूरत करो री।''[15]

भारतेन्दु कायरता को कलंक मानते हैं और कायर पुत्र पैदा करने वाले माता–पिता को भी धिक्कार कर कहते हैं–

''धिक् यह माता–पिता जिन
तुमसो कायर पुत्र जन्यों री।
धिक् र धरी जनन जामै
यह कलंक प्रगटो री।''[16]

ऐसा समय भारतीयों का चुपचाप बैठने का नहीं है। ऐसे समय में भारतेन्दु भारतीयों को शस्त्र बाँधकर युद्ध करने की प्रेरणा देते हैं

''उठौ–उठौ सब कमरन बाँधौ,
शस्त्रन सान धरोरी।
विजय निसान बजाइए बावरे,
आगे पाँव धरोरी।''[17]

एक क्रान्तिकारी देशभक्त की भाँति भारतेन्दु देश के लिए मर–मिटने को प्रेरित करते हुए आह्वान देते हैं – ''जो लोग अपने को देश हितैषी लगते हो, वह अपने सुख को होम करके अपने धन और मान का बलिदान करके कमर कस के उठो। देखा–देखी सब थोड़े दिन में हो जाएगा। अपनी खराबियों के मूल कारणों को खोजो, कोई धर्म की आड़ में, कोई देश की चाल की आड़ में, कोई सुख की आड़ में छिपे हैं ... कैद न होंगे वरन, जान से मारे जाएँगे, तब तक कोई देश भी न सुधरेगा।''[18] बलिया के मेले में भरी सभा में दिया गया यह व्याख्यान भारतेन्दु के विद्रोह, पीड़ा तथा आह्वान को स्पष्ट करता है। भारतेन्दु के देश–प्रेमी हृदय की पीड़ा क्रान्ति की ज्वाला बनकर मानों सब कुछ भस्म करने के लिए आतुर हो। 'नील देवी' में भारतेन्दु शेर की भाँति गर्जना करते हुए केसरिया बाना पहनकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं–

''चलहु बीर उठि तुंरत सबै जय ध्वजहि उड़ओ।
ल्हु म्यान सो खीचि रन रंग जमाओ।
जे आरज गन एक होहि निज रूप सम्हारै।
तजि गृह कलहहि अपनी कुल मरजाद बिचारौ।
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी।
सिंहे जगे कहुँ स्वान ठहरि है समर मँझारी।''[19]

अंग्रेजी साम्राज्य के बन्धनों में भी भारतेन्दु की राष्ट्रभक्ति का मूलमन्त्र ब्रिटिश शासन से मुक्ति की कामना थी।

(ख) स्वदेशी भावना

भारतेन्दु एक देशभक्त साहित्यकार थे। देशभक्ति उनकी रग–रग में रमी हुई थी। उन्होंने अपने देश के सब धर्म, सम्प्रदायों, सभी वर्गों और सभी भाषाओं के साथ प्रेम प्रदर्शित किया। साथ ही उन्होंने जो भारतीय विदेशी रंग में रंग कर अपनी संस्कृति और देश का विस्मरण करते जा रहे थे, उनके लिए स्वदेशी वस्तुओं से प्रेम, स्वदेशानुराग, स्वभाषा और स्वराज की महत्ता का प्रतिपादन किया है।

(ग) स्वदेशी वस्तुओं से प्रेम

भारतेन्दु को अपने देश की वस्तुओं से भी असीम प्रेम था। वे जानते थे कि स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग से ही देश के उद्योग–धन्धे तथा व्यापार आदि में वृद्धि होती है। भारतेन्दु की यह हार्दिक इच्छा थी कि हमारे देश में उद्योग–धन्धों का प्रचलन हो। विज्ञान और शिल्प की शिक्षा के द्वारा अपने देश के उद्योग–धन्धों की वृद्धि, भारतेन्दु जी चाहते थे। इसलिए भारतेन्दु जी यह प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि हम आविष्कारों का पता लगाएँगे कि रेल कैसे चलती है, तोप कैसे चलाई जाती है, वस्त्र और कागज का निर्माण कैसे होता है, फोटो कैसे खिंचती है–

''रेल चलत केहि भाँति सो कल है काको नाँव।
तोप चलावत किमि सबै जारि सकल जो गाँव।।
वस्त्र बनत केहि भाँति सो कागज केहि बिधि होत।
उतरत फोटो ग्राफ किमि छिन मंह छाया रूप।।''[20]

भारतेन्दु ने लोगों का आह्वान किया कि हम लोग कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे, अपने देश का बुना कपड़ा ही पहिनेंगे।''[21] 'भारत–दुर्दशा' नाटक में भारतेन्दु ने कहा है–''कपड़ा बीनने की कलमंगनी, हिन्दुस्तानी कपड़ा पहनना।''[22]

'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ?' नामक बलिया व्याख्यान में भारतेन्दु जी ने जनता को यह सन्देश दिया कि ''कारीगरी जिससे तुम्हारें यहाँ बैठे, तुम्हारा रूपया ही रहै वह करो।''[23]

इस प्रकार भारतेन्दु जी को अपने देश से अगाध प्रेम था तथा स्वदेशी वस्तुओं को ही व्यवहार में लाने में गौरव अनुभव करते थे तथा उसी में अपनी शान समझते थे।

(घ) स्वदेशी दुर्दशा का तीखा अनुभव: भारतेन्दु को अपने देश से अत्यधिक प्रेम होने के कारण अपने साहित्य में भारत के गौरव–गान का वर्णन करते हुए तत्कालीन दुर्दशा पर क्षोभ व्यक्त किया है। देश–भक्ति का स्वर उनके साहित्य में मुख्य रूप से झंकृत होता है। भारतेन्दु जी की राजनीतिक विचारधारा नवजागृति की प्रतीक थी। भारतेन्दु को अपने देश की दुर्दशा का तीखा बोध था। भारतेन्दु को 'स्व' से बहुत प्रेम था चाहे वह स्व संस्कृति हो, चाहे प्रकृति हो, चाहे मातृभूमि हो, चाहे कोई स्वदेशी वस्तु हो, भारतेन्दु इन सबके अनन्य उपासक थे।

भारतेन्दु जी के साहित्य में देश की तत्कालीन दुर्दशा का मार्मिक वर्णन मिलता है। पराधीनता जनित दुर्दशा की वास्तविक स्थिति का वर्णन करते हुए भारतेन्दु जी ने इस दुर्दशा को दूर करने के उपाय बताए–''भारत–दुर्दशा' तथा 'भारत जननी' नाटकों में अनेक प्रतीकों द्वारा देश की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। इन नाटकों में अनेक प्रतीकों द्वारा देश की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। इन नाटकों में वर्तमान समय की बुरी व्यवस्था पर आँसू बहाए हैं–''फटे कपड़े पहिनै, सिर पर अर्द्ध किरीट, हाथ में टेकने की घड़ी और शिथिल अंग'' [24] के द्वारा भारत का चित्र उसकी यथास्थिति को स्पष्ट करता है। भारत की इसी दुर्दशा से पीड़ित भारतेन्दु की आत्मा का क्रन्दन निम्नलिखित पंक्तियों में मुखरित है–

''हा! हा! भारत–दुर्दशा देखी न जाई।''[25]

'भारत जननी' का चित्र द्रष्टव्य है – ''एक टूटे देवालय की सहन में एक मैली साड़ी पहिनै बाल खोले भारत जननी निन्दित सी बैठी है।'' [26] भारत जननी की यह वेशभूषा एंव निवास उसकी विवश्ता, दयनीयता, आर्थिक कष्ट एवं दुर्दशा का चित्रण करता है।

हम देखते हैं कि कई बार भारतेन्दु के मन में अपने स्वर्णिम अतीत का जो बिम्ब बनता है, वह प्राचीन 'हिन्दू अतीत' का बिम्ब है। मध्यकाल के बारे में भारतेन्दु कई बार या तो उदासीन दिखाई देते हैं या तत्कालीन साम्प्रदायिक स्पर्धा के चलते उनके मन में कथित मुस्लिम शासन के अत्याचारों की स्मृति जागती है। भारतेन्दु जी कहते हैं कि जहाँ कभी विशाल एवं जगत् प्रसिद्ध भव्य मन्दिर थे, वहाँ आज मस्जिद बन गई हैं। इसका वर्णन उन्होंने अपनी कविता 'प्रबोधिनी' में किया है–

''जहाँ बिवेसर सोमनाथ माधव के मन्दिर।
तहँ मस्जिद बनि होत अब अल्ला अकबर।
जहँ झूखी उज्जैन अवध कन्नौज रहे बर।
तहँ अब रोवत सिवा चहुँ दिसि लखियत खंडहर।''[27]

सब प्रकार से भारत प्रजा निरावलंब होने पर भारतेन्दु ईश्वर से प्रार्थना करते है–

''गयो राजधन तेज रोष बल ज्ञान नसाई।
बुद्धि वीरता श्री उछाह सूरता बिलाई।
सब विधि नासी भारत प्रजा कहुँ न रह्यौ अवलंब अब।
जागो–जागे करू ना यतन फेर जागिहौ नाथ कबै।''[28]

महँगाई, भूख, अकाल, अतिवृष्टि, फूट, बैर, आलस्य और टैक्स के कारण भारत–दुर्दैव के माध्यम से भारतेन्दु जी ने दुर्दशा का वर्णन किया है।''[29] शाक्य सिंह, हरिश्चन्द्र, राम, युधिष्ठिर की इस भारत–भूमि पर दुःख दिखाई देते हैं–

''जहाँ भए शाक्य हरिचंदरू नहुष ययाति।
जहँ राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती।।
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती।
अब जहँ देखहु तहैं दुःखहि दुःख दिखाई।
हा! हा! भारत–दुर्दशा न देखी जाई।।''[30]

लेकिन लगता है कि भाग्य इतना प्रतिकूल हो गया है कि 'मंगलमय भारत–भुव मसान ह्वै जै ह्वै।'' [31]

निष्कर्ष: इस प्रकार भारतेन्दु जी ने भारत की इस दुर्दशा के अनेक आर्थिक सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक कारण बताते हुए भारतेन्दु ने उन्हें दूर करने का मार्ग प्रशस्त किया तथा प्रेरणा दी।

भारतेन्दु एक जागरूक कलाकार थे। उन्होंने अंग्रेजी रहन–सहन की चकाचौंध में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को तिलांजलि देने वाले व्यक्तियों पर व्यंग्य किया है।

इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतेन्दु जैसे महान साहित्यकार का जन्म एक आश्चर्यजनक ऐतिहासिक घटना है। उन्होंने अपनी प्रतिभा एवं व्यक्तित्व के बल पर भाषा एवं साहित्य को नया जीवन प्रदान किया। भारतेन्दु की प्रतिभा सर्वोत्तमोन्मुखी थी तथा उनके साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक। उन्होंने प्रत्येक विषय पर लेखनी के द्वारा सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत करके अपनी अद्भुत सृजना शक्ति का परिचय दिया। उनके आगमन के द्वारा जहाँ हिन्दी भाषा एवं हिन्दी साहित्य को एक नई शक्ति प्राप्त हुई, वहीं पर 'स्वजाति' व 'स्वदेश की भावना' के द्वारा 'स्व' को पहचानने की नवीन दृष्टि मिली।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा डॉ0 विनयमोहन (अष्टम भाग) हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, (दूसरा भाग) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ0 04
2. शर्मा हेमन्त (1989) भारतेन्दु समग्र, प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना, वाराणसी, पृ0 374
3. वही (पहला भाग) पृ0 461
4. वही, (दूसरा भाग) पृ0 461
5. वही, (तीसरा भाग), पृ0 216
6. वही, पृ0 217
7. वही, पृ0 258
8. वही, पृ0 250–51
9. वही, पृ0 251
10. वही, (दूसरा भाग) पृ0 462
11. वही (पहला भाग), पृ0 276
12. वही (दूसरा भाग) पृ0 461
13. वही पृ0 461
14. वही पृ0 470
15. वही पृ0 123
16. वही पृ0 123
17. वही पृ0 123
18. वही (तीसरा भाग) पृ0 1013
19. वही (दूसरा भाग) पृ0 486
20. वही (पहला भाग) पृ0 229
21. वही (दूसरा भाग) पृ0 467
22. वही (दूसरा भाग) पृ0 467
23. वही (तीसरा भाग) पृ0 1013
24. वही (दूसरा भाग) पृ0 461
25. वही पृ0 460
26. वही पृ0 472
27. वही पहला भाग पृ0 211
28. वही पृ0 211
29. वही (दूसरा भाग) पृ0 463
30. वही पृ0 461
31. वही पृ0 482